कालिदास के रघुवंश में नैतिक मूल्य : एक अध्ययन

डॉ. बलाभाई एस.रबारी
आसिस्टंट प्राध्यापक, संस्कृत विभाग,
श्री टी.ए.चतवाणी आर्ट्स & जे.वी.गोकल
ट्रस्ट कोमर्स कोलेज, राधनपुर, जि. पाटण,
राज्य-गुजरात, पीन. 385320,

मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक जीव है । आत्मरक्षण एवं एकत्रित रहने की नैसर्गिक वृत्तियों का इस संगठन में विशेष योगदान रहता है । इस जीवन का आधार पारस्परिक सहयोग और सेवा विनिमय है। इन विविध प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर तथा अनुरूप परिस्थितियों मे आत्मरक्षण को कठिन हुआ मनुष्य खुद को सामाजिक एकता के सूत्र में आबद्ध करने की चेष्टा करता है । सामाजिक संगठन में ही आचर, विचार, आदर्श आदि की एकता संगठन शक्ति एवं सामूहिक विकास समाविष्ट है।

मानव का व्यावहारिक ज्ञान ही इस संपर्क को सुंदर एवं सफल बनाने में सिद्ध होता है। सामाजिक जीवन में व्यक्तियों का परस्पर मिलन, आदान-प्रदान, वार्तालाप, आचरण आदि सभी व्यावहारिक ज्ञान पर ही अवलम्बित रहते है। व्यक्ति की व्यवहार कुशलता एवं आचार संबंधी दृढ़ता उसकी उन्नति एवं समृद्धि की आधारशिला है। सामाजिक नियमो, मान्यताओं एवं व्यवहारिक नियमों के अनुकूल आचरण मानव के लिए हितकारक माना जाता है ।

भारतीय परंपरा में नारी का उत्कृष्ट स्थान रहा है। प्रस्तुत लेख में नारी विषयक कालिदास के रघुवंश में नैतिक मूल्यों के प्रति समाज का दृष्टिकोण किसी समाज की सभ्यता का मापदंड है। इसलिए नारी में व्यवहार एवं आचरण के क्षेत्र में नैतिक मूल्य का परिक्षण में प्रकाश डालता है। श्रेष्ठ लक्षणों वाली स्त्रियाँ गृह की विभूति होती है। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार से गृहस्थ जीवन स्वर्ग बन सकते हैं । स्त्री और पुरुष दोनों को गृहस्थ की गाड़ी के दो पहिए बताए हैं, इससे उनका महत्व स्वत: एवं स्पष्ट हो जाता है। सुलक्षणी नारी में सामान्यत: वे सब गुण होते हैं, जिनके द्वारा गृहस्थ आनंदोल्लास का केंद्र बनकर पुरुष को सर्वत्तोमुखी उन्नति प्रदान करता है। पति की इच्छा का अनुगमन करना सदगृहिणी का प्रमुख कर्तव्य होता है । स्त्रियों ने दाक्षिण्य गुण होना शुभ लक्षण माना गया है। दाक्षिण्य अथवा उदारता स्त्रियों का उत्तम भूषण है। दाक्षिण्य से रहित सौंदर्य बिना पुष्प के उधान के समान है। गृहिणी, मंत्री, एकांत की सखी और मनोहर कलाओं के प्रयोग में प्रिय शिष्या थी । तुम को हरण करते हुए निर्दय मृत्युने मेरा क्या हरण कर लिया ? कही, अर्थात मृत्युने मेरा सब कुछ हरण कर लिया ।[1]

समाज में स्त्रियों के पातिव्रत्य सदा से ही प्रश्रय दिया गया है। पातिव्रत्य का पालन करनेवाली स्त्री अपने प्रभाव से सब वस्तुओं पर विजय प्राप्त कर लेती है। वह एकाग्र चित से अपने पति का ही चिंतन करती है। वह तो निरानन्दा और तपस्विनी है। पति वियोग नारियों का सच्चा पारखी है। वह तो अत्यंत कठोर पति के विरह व्रत के पालन में तापसी के समान निरुत्सवा रहकर जीवन यापन कर रही है। मन, वचन और कर्म से पति के प्रति अव्यभिचार एवं उसके चित् का अनुगमन- ये ही पातिव्रत्य की कसौटी मानी गई है। माता पृथ्वी से भी उसने यही कहा था।[2]

कालिदास ने भी इस तथ्य का सीता के द्वारा प्रतिपादन करवाया है। श्रेष्ठ बुद्धिवाले राम के द्वारा मनमानी की गई है, एसी सीता को आशंका कदापि नहीं है। सीता राम के द्वारा किये गये इस परित्याग को अपने पूर्वजन्म में किये पापों का असह्य फलरूप वज्रपात मानती है।[3] पतिव्रता स्त्रियों अपने पति पर पूर्ण विश्वास रखती है । वह आत्मा विकत्थना करके अपने ही दोषों को दुख का कारण मानती है। सीता मिथ्या कलंक से कलंकित अपने जीवन को इस दुख मैं धारण करना नहीं चाहती। परतु उसका अपने पति के प्रति कुछ कर्तव्य अभी अवशिष्ट रह गया है। राम की सन्नति अभी उसके गर्भ में है,जिसका पालन पोषण उसका प्रमुख कर्तव्य है। पुत्र के बिना इस विश्व प्रपश्च से मुक्ति मिलना संभव नहीं है। यदि रक्षा करने योग्य मुझमें स्थित तुम्हारा तेज (गर्भ) यदि बाधक नहीं होता तो तुम्हारे नित्य विरह के कारण निष्फल इस अभागे जीवन की भी में उपेक्षा कर देती अर्थात मर जाती।[4]

पातिव्रत्य का यह कितना उच्च आदर्श है कि पति के द्वारा निष्ठुरता एव निर्दयतापूर्वक त्यक्त होने पर भी वह अगले जन्म में पुन: राम को ही पति के रूप में प्राप्त करने हेतु अपने कुल देवता सूर्य से प्रार्थना करती है।[5] पति-देवता सीता के ये विचार आगामी किसी भी युग में आदर्श पत्नीत्व के लिए मापदंड प्रस्तुत कर सकते हैं।

नारी के नैतिक का कई दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है। समाज में नारी कन्यात्व, पत्नीत्व,गृहिणीत्व,मातृत्व आदि अनेक रूप के दर्शन होते हैं। अतः उन दृष्टियों से यह अध्ययन समीचीन है।

नैतिक गुणो के अतिरिक्त आदर्श पत्नी में शारीरिक आकर्षण को भी अपेक्षा की जाती है। पत्नी के मनोहर स्मित,हाव-भाव,कटाक्ष एवं वाणी माधुर्य उसे पति के समस्त अनुराग का भाजन बना देते हैं। परंतु पत्नी के रूप और यौवन का यह समस्त आकर्षण तभी पूर्ण और सार्थक होता है, जब उसका हृदय और स्वभाव भी सुंदर हो। वस्तुत: पत्नी का सारा शारीरिक सम्मोहन, उसके सारे श्रृंगार और प्रसाधन उसके सर्वोत्कृष्ट भूषण पति के अभाव में निस्सार एवं निष्प्रभाव हो जाते हैं। पतिप्रेम ही स्त्री का एकमात्र श्रृंगार है। धार्मिक कृत्यों में पत्नी का बड़ा प्रभाव माना गया है। पति शुश्रुषा ही उसका सर्वोपरी धर्म है। पति के वियोग होने पर वह प्राण धारण करने को भी अपेक्षा नहीं करती। मृत्यु के अनन्तर भी पति-पत्नी का शाश्वत संबंध माना गया है। व्रत, उपवास, सत्य का पालन, सरल एवं स्वल्प वेशभूषा, श्रृंगार, आमोद-प्रमोद,

भोजन आदि में अनासक्त रहकर पति के चिंतन में ही रत रहना उसका परम कर्तव्य है। पति के प्रति उसे अगाध विश्वास रहता है। उसके प्रति वह किसी प्रकार के अनुचित्त व्यवहार कर दोषी नहीं बनना चाहती । बिना अपराध परित्याग करनेवाले राम के प्रति मन में वह किसी दुर्भावना का उदय नहीं होने देती, केवल अपनी पापी आत्मा की ही निंदा करती है। साध्वी(सीता)ने बिना अपराध के त्याग करनेवाले पति (राम) को निदित वचन नहीं कहा, किंतु स्थिरदुख को भोगनेवाली अपनी आत्मा की ही बार-बार निंदा की है।[6]

सीता ने वर्णाश्रम धर्म के रक्षक राजा राम से सामान्य तपस्विनी की तरह रक्षा की याचना की। पत्नीरूप में न सही पर वर्णाश्रम धर्म के पालक के नाते वह भी रक्षा पाने की अधिकारिणी है। मनु ने वर्णाश्रम की रक्षा करना राजा का धर्म कहा है। इस कारण बाहर निकाली हुई भी मुझको तुम सामान्य तपस्विनी के समान देखना (मुझे पत्नी न समझते हुए एक तपस्विनी समझ कर वर्णाश्रम पालन के नाते मेरी भी अन्य तपस्विनीयों के समान रक्षा करना)[7]

लक्ष्मण के प्रत्यावर्तन के समय सीता ने राम के पास एकमात्र उपालंभ भेज दिया कि मिथ्या लोकपवाद के भय से किया गया मेरा परित्याग किया, तुम्हारे लोकविख्यात कुल के लिए योग्य है। मेरे कहने से उस राजा को तुम कहना कि- प्रत्यक्ष में अग्नि में भी मुझ को लोकनिंदा के सुनने से जो तुमने छोड़ दिया है, वह लोकविख्यात तुम्हारे कुल के योग्य है। [8]

आदर्श पत्नी का यह चित्र जो नैतिक गुणों से अलंकृत एवं शारीरिक आकर्षण से ओत-प्रोत: है। संस्कृत काव्य की अनुपम निधि है। एसी पत्नी ही पति की सुख और संपत्ति की मूल भिति है। जीवनयात्रा के एकांकी मानव पथिक को यही सेवा एवं सहानुभूति का पाथेय प्रदान करती है।

गृहस्थी की आंतरिक अवस्था में भी पत्नी का परमोत्कृष्ट प्रभाव माना जाता है। गृहकार्य में तत्पर गृहिणी के आदर्श चित्रों से संस्कृत साहित्य परिपूर्ण एवं परिप्लुत है। अपने स्वसु एवं स्वसूर का प्रति दिन पादाभिनंदन करके उनकी सुश्रुषा में निरत रहना नववधू का प्रमुख कर्तव्य माना गया है। यथायोग्य सब सासुओं से मेरा प्रणाम कहकर कहना-कि मुझमें स्थित, रामचंद्रजी के संतानवीर्य अर्थात गर्भ को आप लोग हृदय में स्मरण रखना अर्थात उसकी मंगलकामना करना। [9] अतिथिपूजन एवं यज्ञादि में सहचरी बनकर धर्म में मनोनुकूल होकर काम में एवं सुपुत्रवती और ग़ृह व्यवस्थापिका होकर सच्चा अर्थ में वह सहायिका होती है।

उक्त विवेचन यह स्पष्ट कर देता है की सद्ग़ृहिणियों को ग़ृह की शांति एवं सुख की स्थापना करने के लिए अनेक कर्तव्य करने पड़ते हैं। परिवार के सभी व्यक्तियों को अपने सुशील, मृदु एवं सेवापरायण व्यवहार से संपन्न रखने का पूर्ण प्रयास उसकी स्थिति एवं महत्व में चार चाँद लगा देता है।

पत्नी के जीवन की गौरवमय परिणति एवं उसके व्यक्तित्व का पूर्णत्तम विकास मातृत्व में जाकर होता हैं। वंश प्रवर्तन ही उसके समस्त स्नेह और सौंदर्य की सफलता का सूचक है। भारत में मनुष्य पत्नी से पुत्रप्राप्ति सदा से विवाहित जीवन का चरम लक्ष्य माना जाता रहा है। वर-वधू का चुनाव दंपती के भावी सुख की दृष्टि से नहीं अपितु ऐसे सुयोग्य पुत्र की प्राप्ति को दृष्टि से किया जाता था, जिसमें कुलक्रम अवच्छिन्न रहे। कन्या के अखंड कौमार्य एवं वर की सच्चरित्रता का आग्रह उनकी भावि संतान की श्रेष्ठता और शुद्धि के लिए ही किया जाता था।

पत्नी में गर्भ के लक्षण देखकर पति की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता एवं वह पुरुष उस अवस्था में पत्नी के प्रत्येक मनोरथ को परिपूर्ण करना अपना अहोभाग्य समझता है। अल्प वय में ही किसी बालक का मेधावी बन जाना भी इस बात पर निर्भर करता है कि गर्भावस्था में माता कैसी परिस्थिति एवं कैसे वातावरण में रहती है।[१०]

गर्भदोहद को पूर्ण करना पति अपना प्रमुख कर्तव्य समझता है। कालिदास ने गर्भवती को रत्नगर्भा, अभ्यंतर अग्नि को धारण करनेवाले शमी वृक्ष तथा अंतः सलिला सरस्वती नदी के समान कहा है।[11]

अभिजात रामकुमारियों का तपोनिरत, जितेन्द्रिय एवं कीर्तिलब्ध महामुनियो की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें आकर्षित करना और उनकी अर्धांगिनी बनने के लिए लालायित होना यह सिद्ध करता है, की विवाह दंपति की तत्काल यौन-भावना की परितृप्ति का नहीं प्रत्युत ऐसी सबल, स्वस्थ और विशुद्ध संतति प्राप्त करने का साधन था, जो माता-पिता का कमनीय समन्वय हो।

संतति के व्यक्तित्व निर्माण में माता का अनुपम योग रहता है। पुत्र अथवा पुत्री के विवाह में माता की इच्छा को प्रमुखता दिये जाने का उल्लेख उपलब्ध होता है। विवाह के अवसर पर माता अथवा उसके समकक्ष किसी वृद्ध नारी की अत्यंत आवश्यकता मानी गई है। नववधु के घर में आने पर वर की माता प्रेम पुलकित ह्रदय से पुत्री की तरह अपनी अंक में बैठाकर उसका स्वागत करती है। श्वश्रु सब विवाहित होने के कारण अनुभवहीन, पुत्रवधू को अपने स्नेहसिक्त ह्रदय से गृहस्थ के समुचित व्यवहार आदि की शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझती है।

श्वश्रु और श्वश्रुर पुत्रवधू को अपनी पुत्री के समान हार्दिक एवं निश्चल स्नेह का अनुदान करते हैं। माता का सौहार्द्रय संबंध आर्य जनता का प्रधान संबल एवं उसकी उत्कृष्टता का प्रमुख रहस्य रहा है। इस मातृक स्नेह ने ही माता को संतति के लिए त्याग, श्रम एवं स्वार्थ का परित्याग करने के लिये सदैव कटिबंध रखा है। अपनी संतति के लिये निस्वार्थ आत्मोत्सर्ग करना ही मातृत्व की चरम अभिव्यक्ति है।

विवाह व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। प्रत्येक प्राणी के लिये विवाह पारिवारिक स्थिरता, सांसारिक सुख एवं परलौकिक कल्याण की दृष्टि से आवश्यक एवं वांछनीय माना जाता रहा है। जिस प्रकार उच्चवर्ण का व्यक्ति उपनयन संस्कार द्वारा द्विजत्व प्राप्त करता है। उसी प्रकार स्त्री पाणिग्रहण द्वारा अपने व्यक्तित्व का उत्कर्ष प्राप्त करती है। माता-पिता अपनी पुत्री के लिये अभिरुप एवं वय तथा गुणों में समान वर की कामना करते हैं। दोनों का समान गुण होना अथवा उनके सदृशत्व का आग्रह उनके भावि जीवन की सुख एवं समृद्धि का लक्षण माना जाता है। क्षत्रिय राजाओं में स्वयंवर का प्रचलन प्राचीनकाल से प्रचलित है। करभ के समान उरु वाली इंदुमती ने मंगल चूर्ण से गौर वर्णमाला को अज के गले में मूर्तिमान अनुराग के समान पहना दिया।[12]

अशोकवाटिका में सीता को देखकर हनुमान ने राम और सीता के स्वभाव, कुल से, सौंदर्य से, नई अवस्था (युवावस्था) से और विनयादि प्रधान उन (शास्त्रज्ञान, शील, दया, दाक्षिण्य आदि) गुणों से अपने समान इस कुमार अज को तुम वरण करो, रतनसुवर्ण के साथ संयुक्त हो। (तुम दोनों का संबंध सुवर्ण में जडे रत्न के समान उचित एवं सर्वप्रिय होगा।)[13] नारी जीवन में मुग्धत्व को एक अमूल्य रत्न के रूप में स्वीकार किया जाता है। मुग्धा नायिका अपने शारीरिक सौंदर्य में ओत-प्रोत होकर नवोढा होने के कारण अनुभवशून्य किंतु रमण की उत्कट कामना एवं कुतुहल से भरी हुई पति के सुख एवं आनंद की निरंतर अभिवृद्धि करती है। मुग्धा नायिका अपने प्रिय विषयक अनुराग को शालीनता एवं लज्जा के कारण प्रकट करने में असमर्थ होती है पर भोली भाली होने के कारण वह उसके शरीर को विद्ध कर रोमांच के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है।[14]

भारतीय काव्यों में ऐसे अनेक तथ्य उपलब्ध होते हैं जिनके आधार पर स्त्री को अवध्या माना गया है। स्त्री का वध एक अनार्य कृत्य एवं नितांत जधन्य माना गया है। समाजविरोधी कार्यो में योग देनेवाली दुराचारिणी नारियों के वध की अनुमति देते हुए कालिदास ने राम के द्वारा मन से स्त्रीदया एवं धनुष्य से बाण को एक साथ मुक्त कराया।[15] सदाचार एवं शिष्टाचार के आधार पर नारी का सम्मान एवं उसके गौरव की रक्षा प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। स्त्री मंत्र का वध सर्वथा गर्हणीय एवं हेय माना गया है। कुछ एक परिस्थितियों को छोड़कर नारी को अवध्य मानना भारतीय संस्कृति के उदात्त एवं समुन्नत दृष्टिकोण का परिचारक है। अतः में समग्र अध्ययन के आधार पर कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

नैतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में नारी के परिप्रेक्ष्य में रखकर सुलक्षणी नारी का कर्तव्य, पातिव्रत्य का नैतिक मूल्य, आदर्श पत्नी के मूल्य, गृहिणीयों के मूल्य, मातृत्व, गर्भिणी, संतति, विवाह, सपत्नी, मुग्धा, सौंदर्य, प्रणय, शील, स्त्रीवध के मूल्य की विशद छणावट की है।

पादटीप

1.कालिदास,सं.2012, ई. 1956, रघुवंशमहाकाव्यम् ,श्रीमल्लिनाथसूरिकृत्या 'सज्जीविनी'व्याख्यया, साहित्यव्याकरणाचार्य श्री हरगोविंद
शास्त्रीकृत्या 'मणिप्रभा'(5-14 सर्गात्मकम्)चौखम्बा संस्कृत सीरिज ओफिस,बनारस-1, पृ. 80

2. Kalidasa, 1924, Raghuvanshm, The Commentary (The Samjivani) of Mallinatha Contos Xi-Xv, M.R.KALE, First
Edition, The Shri Krishana Publishing Co.Bombay, Girgaum p. 342

3. कालिदास,सं.2012, ई. 1956, रघुवंशमहाकाव्यम् ,श्रीमल्लिनाथसूरिकृत्या 'सज्जीविनी'व्याख्यया, साहित्यव्याकरणाचार्य श्री हरगोविंद
शास्त्रीकृत्या 'मणिप्रभा'(5-14 सर्गात्मकम्)चौखम्बा संस्कृत सीरिज ओफिस,बनारस-1, पृ.258

4. वही, 14/65

5. वही, 14/66

6. वही, 14/57

7. वही, 14/67

8. वही, 14/61

9. वही, 14/60

10.कालिदास,रघुवंशमहाकाव्यम् ,www.sanskritworld.in, 3/5

11. कालिदास,रघुवंशमहाकाव्यम् ,www.sanskritworld.in, 3/9

12. कालिदास,सं.2012, ई. 1956, रघुवंशमहाकाव्यम् ,श्रीमल्लिनाथसूरिकृत्या 'सज्जीविनी'व्याख्यया, साहित्यव्याकरणाचार्य श्री हरगोविंद
शास्त्रीकृत्या 'मणिप्रभा'(5-14 सर्गात्मकम्)चौखम्बा संस्कृत सीरिज ओफिस,बनारस-1, 6/83

13. वही, 6/79

14. वही, 6/81

15. वही, 11/17